Asian Global Research
(An International Multidisciplinary Research Journal)

आल्हा में वर्णित तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. अजय शंकर पाण्डेय एवं कौशलेन्द्र प्रताप यादव
प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा, एवं यात्रीकर अधिकारी (उ.प्र.)

आल्हा में वर्णित चन्देल नरेशों की शक्ति तथा प्रतिष्ठा बहुत कुछ जनता के वैभव तथा उनकी आर्थिक दशा पर अवलम्बित थी। वे शक्तिशाली नरेश थे और उन्होंने देश में शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित की थी। फलतः देश की समृद्धि बहुत बढ़ गई थी। जिसके प्रतीक स्वरूप अनेक चन्देल मन्दिर तथा प्रासाद आज भी उपलब्ध है। जनता की आर्थिक दशा की उत्कृष्टता के फलस्वरूप राज्य में अनेक समृद्धिशाली नगर थे। विक्रमाब्द 1050 के कोकल्ल के खजुराहो शिलालेख में चन्देल राज्यान्तर्गत पद्माती नामक नगर का विशदवर्णन है : ''गगनचुम्बी प्रासादो से अलंकृत पद्मावती नगर भूतल में अद्वितीय है'' यह नगर अभूतपूर्व विध से बना था। इसमें अनेक राजमार्ग तथा प्रासाद थे। गगनचुम्बी भवनों की श्वेत दीवारों से घिरे हुए राजमार्गो पर ऊँचे अश्व त्वरित से दौड़ते थे। इसके विशाल भवनों की गगनचुम्बी श्वेत दीवारों में सूर्य की किरणों के संयोग से उनकी शोभा हिमालय की चोटी की भाँति होती थी''।[1] विक्रमाब्द 1011 के खजुराहो शिलालेख में भी राजमार्ग, कुटिया तथ्य भवनों का निर्देश है।

''राजप्रासादों में ऋषियों के उटजों में, सभ्य ग्रामीणों के गोष्ठी के स्थानों में, निम्न वर्ग के लोगों के मिलने के स्थानों में, दुकानों में, चौराहों में, जहाँ लोग परस्पर बात करते है तथा वनप्रदेशों की झोपड़ियों में, सर्वत्र आश्चर्य चकित हो लोग उसके (यशावर्मन) गुणों की प्रशंसा करते है''।[1] इन उद्धरणों तथा चन्देल युगीन अनेक मन्दिर तथा भवनों से स्पष्ट है कि उस काल के इंजीनियर अपनी कला में बहुत निपुण थे। पंक्तिबद्ध हिमधवल गगनचुम्बी प्रासादों तथा उनसे सम्बद्ध राजमार्गो की शोभा बड़ी आकर्षक थी। विविध वस्तुओं की दुकानें पंक्तियों में सुसज्जित थी। वहाँ के चौराहे बड़े विस्तृत होते थे। उन नगरों में संभवतः सफाई आदि का समुचित प्रबन्ध था। वहाँ की सड़कों की चौड़ाई अधिक थी, जिनमें घुड़सवार तथा हाथी अबाध गति से चलते थे।[2] प्रायः सभी ग्रामों में चबूतरा[3] होता था, जहाँ ग्रामवासी एकत्र होकर सामाजिक विषयों की चर्चा करते थे। सामयिक चर्चाएँ होने के साथ ही साथ यह चबूतरे परवर्ती चौपालों की भाँति प्रारम्भिक पाठशालाओं के रूप में भी काम में लाए जाते थे।

उद्यम–

कृषि लोगों का मुख्य उद्यम था, किन्तु लोहे तथा नमक की खानों का भी निर्देश मिलता है। यह प्रदेश अपनी वन्य उपज के लिए भी बहुत प्रसिद्ध था। इन सबका निर्देश देववर्मन के ननयौरा दानलेख में है।[4] इसके अतिरिक्त अयसकार (लोहार), पीतलहार (ठठेरा), रूपकार (सुनार), आदि का भी निर्देश चन्देल अभिलेखों में है।[5] इन अभिलेखों के सम्यक् अध्ययन से प्रतीत होता है कि किसी विशेष कला में विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए कई योग्यता अवरोध होते थे। उदाहरणार्थ विक्रमाब्द 1230 के परमर्दिदेव के महोबा ताम्रलेख का लेखक, जिसने सात वर्ष पूर्व सेमरा लेख भी लिखा था, उसने अपने लिए 'पीतलहार' शब्द का प्रयोग किया है।[6] पाँच वर्ष के पश्चात् उसने अपने को शिल्पिन[7] तथा दो वर्ष बाद उसने विज्ञानिन[8] शब्द का प्रयोग किया है। इससे प्रकट होता है कि किसी कला की निपुणता प्राप्त करने के लिए उस युग में कुछ शिक्षा का विधान था अथवा शिक्षा के बाद भी कुछ प्रयोगात्मक शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर ही लोग व्यावसायिक निपुणता प्राप्त करते थे।

निःसदेह बुन्देलखण्ड इतना उपजाऊ नहीं है जितना कि गंगा की घाटी, फिर भी वहाँ दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं का अभाव नहीं था। शिलालेखों के आधार पर गल्ले के अतिरिक्त यहाँ की मुख्य उपज गन्ना, कपास तथा अफीम आदि थी।[9] इस बहुमूल्य उपज तथा जंगलों की मूल्यवान पैदावार तथा खनिज पदार्थो की प्राप्ति से देश दिन–प्रति–दिन समृद्धिवान होता जा रहा था। राज्य की मुख्य आय भूमि से होती थी, अस्तु उसकी माप तथा भूमिकर आदि की समुचित व्यवस्था की जाती थी। विक्रमाब्द 1290 के मदनवर्मन के औगसी दानलेख तथा विक्रमाब्द 1230 के परमर्दिदेव के महोबा दानलेख से चन्देल युग में प्रचलित भू–माप आदि का निर्देश मिलता है। औगसी दानलेख में यह उल्लेख है कि 10 हल भूमि का दान किया गया था जिसके बोने के लिए 711 द्रोण (वाव) की आवश्यकता होती थी। हल अथवा भूमिहल का निर्देश व्युहलर द्वारा सम्पादित चालुक्य दान लेखों में भी मिलता है। प्रो. कीलहार्न का विचार है वाव का आशय वायः अथवा बीज से है। अपने ''प्रीजेण्ट लाइफ इन विहार'' नामक पुस्तक में डॉ. ग्रीयर्सन ने इसी शब्द का प्रयोग बावग् अथवा बौग के रूप में किया है। हुल्ज द्वारा सम्पादित विक्रमाब्द 933 के ग्वालिया शिलालेख में भी इन शब्दों का उल्लेख है। परमर्दिदेव के महोबा दानलेख में यह उल्लेख है कि एक द्रोण लगभग 16 प्रस्थ के बराबर होता है। उसमें ''पादेन द्रोण चतुष्टम्'' आया है जिसका आशय है कि एकपद कम चार द्रोण अर्थात् 64-4=60 वर्ष बाघ भूमि 5 हलों से जोती जाती थी।

आल्हा में वर्णित चन्देल युग में किसी न किसी रूप में जमीदारी की प्रथा अवश्य थी। राज्य के बड़े अधिकारियों को वेतन के बजाय गाँव दिये जाते थे और उन्हें उस गाँव से भूमिकर वसूल करने का अधिकार होता था। परमर्दिदेव के विक्रमाब्द 1223 के सेमरा दानलेख में भी इस प्रथा का निर्देश मिलता है। इसमें राजा द्वारा अनेक ब्राह्मणों को भूमिदान दिये जाने का उल्लेख है। और साथ ही राजा द्वारा दिये गये निर्देश का भी निर्देश मिलता है, ''कोई भी राज्याधिकारी दान में दी हुई भूमि के सम्बन्ध में हस्तक्षेप न करे और लोग जो कर राज्य को देते थे वे अब दान पाने वाले ब्राह्मणों को दें।''[10] इससे स्पष्ट है कि कुछ ऐसे भी कर थे जिन्हे ग्रामवासी सीधे राज्य को देते थे और कुछ ऐसे कर भी थे जिन्हे वे राज्याधिकारियों तथा स्थानीय निकाय आदि को देते थे जो जनता के हित के कार्य सम्पादित करते थे। इस प्रकार कृषक वर्ग अनेक प्रकार के कर अनेक व्यक्तियों अथवा संस्थाओं को देता था।

सोने, चाँदी तथा ताँबे की विभिन्न चन्देल मुद्राओं की प्राप्ति से प्रतीत होता है कि मुद्रा विनिमय का सम्यक् प्रचार था। अनेक कर धन के रूप में वसूल होता था किन्तु दूरस्थ ग्रामों में जहाँ विस्तृत जागृति न हुई थी, वहाँ वस्तु विनिमय की व्यवस्था थी। बढ़ई, लोहार, कुम्हार आदि को उनकी सेवाओं के लिए जिन्स के रूप में भुगतान होता था। चन्देल नरेशों द्वारा प्रसारित सोने, चाँदी के विभिन्न सिक्कों से व्यापार तथा उद्योग को बड़ा योग मिला। विक्रमाब्द 1223 के परमर्दिदेव के सेमरा लेख में भाग तथा भोग करों का उल्लेख है। **डॉ. व्यूहलर** का विचार है कि भाग वह कर था, जो किसान अपनी उपज के एक निश्चित अंश को कर के रूप में राज्य को देता था और भोग आने तथा जाने वाले माल पर चुंगी के रूप में वसूल होता था। भोग कर की इस परिभाषा से प्रतीत होता है कि उस समय व्यापार उन्नति पर था और उससे राज्य को बड़ी आय होती थी।

सामाजिक परिस्थितियाँ–

धर्मशास्त्रकारों, विदेशी यात्रियों तथा इतिहासकारों ने भारतीय सामाजिक परिस्थितियों का विशद चित्र उपस्थित किया है। हिन्दू समाज में अतीत काल से जाति प्रथा की अपनी निज की विशेषता है। विदेशी यात्री तथ्य इतिहासकार इसकी बारीकियों को समझने में सवर्धा असमर्थ रहे। हिन्दू धर्मशास्त्रों में भी इसका अनेकशः उल्लेख है। समस्त हिन्दू समाज चार वर्णो में विभक्त था, किन्तु मेगस्थनीज तथा स्ट्रैबो प्रवृत्ति ग्रीक लेखकों तथा इब्न खुर्दहा[11] तथा अल इदरीस[12] सदृश्य मुसलमान इतिहासकारों कामत है कि हिन्दू समाज में सात वर्ग थे। अल्बरूनी ने अपने वृतान्त में 16 जातियों का उल्लेख

किया है। चार प्रमुण वर्णो के अतिरिक्त उसने 8 स्पृश्य तथा 4 अस्पृश्य[13] जातियों का निर्देश किया है। किन्तु उस युग में 16 से भी अधिक जातियाँ थी, क्योंकि समाज क्रमशः प्रगतिशील था। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में 64 जातियों का उल्लेख किया है।[14] जातियों की यह बढ़ती हुइ संख्या आश्चर्यजनक नहीं है। क्योंकि हिन्दू समाज के नियम दिन–प्रति–दिन कड़े होते जा रहे थे। अपने व्यवसायी वर्ग में ही सजातीय सहभोज तथा सजातीय विवाह ही उत्तम समझे जाते थे। इन्हीं व्यवसायिक वर्गो ने कालान्तर में उपजातियों का रूप धारण कर लिया था। चन्देल शिलालेख में अयसकार, रूपकार आदि का वर्णन है। जिन्होंने बाद में जाति का रूप धारण कर लिया।

निस्सन्देह हिन्दू समाज को रूढ़िवादिता के कारण अनेक उपजातियों का प्रादुर्भाव हुआ, किन्तु यह भी जातियाँ चार प्रमुख वर्गो से सम्बन्धित है, जिन पर समस्त हिन्दू समाज अवलम्बित है। इब्नखुर्दहा ने निम्नलिखित सात जातियों का वर्णन किया है–(1) सबकुफिया, (2) ब्रह्म, (3) कत्रिया, (4) सूद्रिय, (5) वैसुरा, (6) सन्दालिय, (7) लहूड़[15]

ये सात जातियाँ अलइदरीस द्वारा वर्णित जातियों के ही समान है।[16] केवल लिखावट का ही थोड़ा हेर–फेर है। इन लेखकों द्वारा दिए हुए विवरणों से स्पष्ट है कि ब्रह्म, सूद्रिय, वैसुरा तथा सन्दालिया, ब्राह्मण, शूद्र, वैश्य तथा चण्डाल ही है। सब कुफिया का आशय संभवतः सतक्षत्रिय से है।[17] शासक वर्ग के लोग इस जाति में सम्मिलित थे[18] और सभी शेष जातियों से श्रेष्ठ समझे जाते थे। अल्बरूनी की 16 जातियों में अधिकांश व्यावसायिक वर्ग शामिल थे। चार मुख्य जातियों के अतिरिक्त उसने धोबी, चर्मकार, बाजीगर, सूपकार, ढाल बनाने वाले (लोहार), मल्लाह, मछुवाहे, शिकारी (व्याध) तथा कोरी का उल्लेख किया है। इन जातियों ने अपने संघ बना रखे थे। अल्बरूनी द्वारा अन्य उल्लिखित जातियाँ हाडी, डोम्ब, चाण्डाल तथा बधतऊ है, जो साधारणतः ग्रामी की सफाई और अन्य जातियों की सेवादि जैसे निष्कृष्ट कार्य करते थे। विदेशियों द्वारा वर्णित तत्कालीन दशा ऐसी ही थी और निश्चय ही बुन्देलखण्ड में भी अधिकांशतः उपरोक्त जातियाँ ही रहती थी, जैसा कि चन्देल लेखों में भी निर्देश है।

सत्क्षत्रिय–

इब्दखुर्दहा तथा अलइदरीस दोनों का मत है कि ब्राह्मणों के सहित शेष सभी छहों जातियाँ सबकुफिया अथवा सत्क्षत्रियों का सम्मान करती थी। सत् क्षत्रिय जाति में से ही राजा का चुनाव होता था।[19] सत् क्षत्रिय तथा क्षत्रिय का अन्तर महत्वपूर्ण था। क्षत्रिय शब्द में सत् प्रत्यय का योग होने से प्रतीत होता है कि इस जाति राजवंश के ही लोग होते थे, जिनका सम्मान ब्राह्मण भी करते थे। अन्य साधारण क्षत्रिय ब्राह्मणों से श्रेष्ठ नहीं समझे जाते थे और उनकी गणना अपनी श्रेणी के अनुरूप ही थी।

ब्राह्मण–

ब्राह्मण हिन्दू समाज में सर्वोपरि माने जाते थे। अपने उच्चादर्शो तथा विद्वता के कारण वे वन्दनीय थे। अनेक चन्देल शिलालेखों[20] में ब्राह्मणों का उल्लेख है। उदाहरणार्थ देववर्मन के ननयौरा दानलेख में वेद–वेदांग में पारंगत ब्राह्मणोचित छहों धर्मो का पालन में तत्पर उच्चादर्श वाले ब्राह्मण अभिमन्यु का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि कम से कम ब्राह्मणों का एक वर्ग जिसमें अभिमन्यु भी था, धार्मिक कर्त्तव्यों के पालन में तत्पर था। उनका जीवन शुद्ध था। वे ज्ञानाग्नि बनाए रखते थे और अनेक स्मार्त यज्ञों का अनुष्ठान भी करते थे। प्रबोध चन्द्रोदय में एक यज्ञशाला का विस्तृत वर्णन है, जहाँ इस प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान होता था अहंकार नामक पात्र वाराणसी के दृश्य का वर्णन करते हुए गंगा तटीय कुटी का वर्णन करता है, ''जिसके दरवाजे पर गड़े हुए वंश स्तम्भों पर डाले गये स्वच्छ वस्त्र हिलोल रहे है, जहाँ कृष्णजिन, प्रस्तरखण्ड, समिधा, चषाल, मुसल पड़े है, जहाँ सतत् होम के होते रहने के कारण धूम्र निकलता रहता है तथा सुगन्धि फैलती रहती है।''[21] ब्राह्मणों का कर्त्तव्य यज्ञों के अनुष्ठान तक ही सीमित न था। शिक्षा दान भी उनका प्रधान कार्य था और वे अनेक विद्यालयों

का संचालन करते थे। धर्मवेत्ता, ज्योतिष, गणित, काव्य तथा दर्शन के ज्ञाता अधिकांश ब्राह्मण जाति के ही लोग होते थे। उनकी विद्वता की मान्यता तत्कालीन नरेश भी मानते थे और उन्हे अनेक प्रकार के दान देते थे। हड़डाला ताम्रलेख में यह निर्देश है कि श्री महेश्वाचार्य की विद्वता से प्रभावित होकर महासामन्तधिपति धरणि बाराह ने 'विमिकल' नामक ग्राम उसे पारितोषिक रूप में दिया था।[22]

उस युग में ब्राह्मण अपने गोत्र तथा शाखा से प्रसिद्ध थे और उन्ही के आधार पर वे अनेक वर्गो में विभक्त हो गये थे। अपने गोत्रों के प्रवरों का सम्बन्ध वे प्राचीन ऋषियों से वे स्थापित करते थे। प्रत्येक गोत्र में तीन प्रवरों के निर्देश की प्रथा बन गई थी। धंगदेव ने ननयौरा ताम्रलेख[23] में भरद्वाज जगोत्रीय भट्ट यशोधर के तीन प्रवरों– भरद्वाज, आंगिरस तथा बार्हस्पत्य का उल्लेख है। इसकी पृष्टि ''मुन्तलगोत्रीय'' त्रिप्रवराय पद से भी होती है। मदनवर्मन के सेमरा ताम्रलेख में गोत्रों की एक अच्छी सूची दी हुई है। गोत्र के पूर्व में 'स' तथा शाखा के अन्त में ब्रहचारी शब्द जोड़ने की उस युग में प्रथा थी। ब्राह्मण के लिए ''भट्ट'' शब्द का प्रयोग होता था।[24] और 'भट्ट' का अर्थ 'सम्मानीय' होता था।[25]

चन्देल युग में ब्राह्मणों की एक जाति न रह गई थी और उसमें अनेक उपजातियाँ बन गई थी। चहमान भर्तृबद्ध के हानसट ताम्रपत्रों[26] में आसुरायन गोत्रीय त्रिवेदिन ब्राह्मण भट्टल को ग्रामदान दिये जाने का उल्लेख है। अनेक शिलालेखों से ज्ञात होता है कि उस युग में ब्राह्मणों का स्थान के आधार पर भी विभाजन हो गया था। मैत्रक खरग्रह के अलीना ताम्रलेख में आनन्दपुर निवासी शर्कराक्षी गोत्रीय ऋगवेदिन ब्राह्मण केशव के पुत्र नारायण को दान दिये जाने का उल्लेख है। उसने खेटक में अपना निवास बनाया था। उस लेख में उसे आनन्दपुर चतुर्वेदी अथवा आनन्दपुर के चतुर्वेदी के नाम से सम्बोधित किया गया है। बल्लभी नरेश चक्रवर्तिन् धरसेन चतुर्थ के अलीना लेख में भी एक आनन्दपुरीय चतुर्वेदीय का वर्णन है।[27]

क्षत्रिय–

शासक वर्ग तथा उनके सम्बन्धियों का समाज में विशेष आदर था और ब्राह्मण भी उनका सम्मान करते थे। किन्तु साधारण क्षत्रियों को सब सुविधाएँ प्राप्त न थी, जो उनके सजातीय राजवंश के पुरूषों को प्राप्त थी। समाज में उनका उल्लेख ब्राह्मणों के बाद होता था, किन्तु सुविधाएँ उन्हे लगभग ब्राह्मणों की ही भाँति थी। अल्वरुनी का कथन है कि चोरों के अपराध में क्षत्रियों का दाहिना हाथ और बायाँ पैर बेकार कर दिया जाता था, परन्तु ब्राह्मणों की भाँति उसे अन्धा न किया जाता था, उस समय क्षत्रियों के गोत्र का विशेष महत्व न था। उस समय कुल का बड़ा महत्व था। उत्तरी भारत में सार्वभौम नरेश न होने के कारण वहाँ अनेक राज्य थे। अस्तु कुल का महत्व उस युग में बढ़ गया था। विभिन्न शिलालेखों में विभिन्न राजकुलों का उल्लेख मिलता है, यथा– चन्देल वंश कुमुदेन्दु विशाल कीर्ति चन्द्रेलान्वयेन चाहमान नृपति प्रख्यात वंशश्चिरां, श्री राष्ट्रकूट वंशों, प्रतिहार वंशो, चौलिकिंकरांन्वियो आदि के उल्लेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

वंशानुगत व्यवसाय की प्रथा शिथिल होती जा रही थी। अस्तु सैनिक सेवा ही क्षत्रियों का मुख्य व्यवसाय न था। ब्राह्मणों की भाँति क्षत्रिय भी अपने वर्ण के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय करने लगे थे। प्राचीन काल की भाँति सेना में केवल क्षत्रियों का ही एकाधिकार न था। उसमें अन्य जाति के लोग भी थे। सैनिक सेवा के अतिरिक्त जीविका के लिए क्षत्रिय कृषि आदि भी करने लगे थे। क्षत्रियों को वेदाध्यन तथा पौराणिक यज्ञों के अनुष्ठान की भी स्वतन्त्रता थी। अल्बरुनी का कथन है कि क्षत्रिय वेदाध्यन तथा पौराणिक नियमों के अनुरूप यज्ञों का अनुष्ठान कर सकते थे।[28]

वैश्य–

क्षत्रियों के पश्चात् वैश्यों की गणना होती थी। समाज में उनकी सामान्य स्थिति थी। बौधायन धर्मसूत्र में तो यहाँ तक उल्लेख है कि वैश्यों की लगभग वहीं स्थिति थी जो कि शूद्रों की। दोनों में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध भी होते थे और दोनों

ही व्यक्तिगत सेवावृत्ति तथा कृषि का व्यवसाय करते थे। अल्बरुनी के वृत्तान्त से भी इसकी पृष्टि होती है। उन्हे वेदाध्यन का निषेध था और इसका कठोरता से पालन होता था। वेद मंत्रोच्चारण के अपराध में वैश्य अथवा शूद्र का जिहाच्देदन कर दिया जाता था।[29] आर्थिक दृष्टि से उनकी स्थिति अच्छी थी। कृषि के अतिरिक्त वे व्यापार भी करते थे और अनेक व्यावसायिक संघ बनाने रखे थे।

शूद्र–

आल्हा में वर्णित समाज में शूद्र का निम्न स्तर था। भूमि कर्षण अथवा द्विजातियों की सेवा वृत्ति ही उनका मुख्य उद्यम था। वेदाध्यन उन्हे निषेध था। वे पौराणिक यज्ञ भी न कर सकते थे। कुछ धार्मिक तथा धनिक शूद्रो को, जिनके वैवाहिक सम्बन्ध वैश्यों से थे, उन्हें ब्राह्मणों के माध्यम एवं पौराणिक मंत्रों से श्राद्ध संस्कार तथा अन्य स्मृति अनुष्ठानों के करने का निर्देश था।

अर्न्तजातीय विवाह–

आज की भाँति उस युग में भी विवाह एक पुनीत संस्कार समझा जाता था और सर्वण विवाहों की ही सर्वत्र प्रतिष्ठा थी। अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह भी होते थे, किन्तु समाज में आदर न था। तत्कालीन शिलालेखों में इस सम्बन्ध की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, जिससे ज्ञात होता है कि सवर्ण विवाह का ही सर्वत्र समादर था। शिलालेखों में दिये हुए नरेशों तथा मंत्रियों के वंश परिचय से अनेक सवर्ण विवाहों का निर्देश मिलता है। प्रबोध चन्द्रोदय में एक अनुलोम विवाह का निर्देश है। प्रबोध चन्द्रोदय में अहंकार नामक पात्र का कथन है, ''हे मूर्ख सुनो! मेरी माँ उत्तम कुल की न थी, किन्तु मैंने अग्निोत्रिन ब्राह्मण की कन्या से विवाह किया है। अस्तु मैं अपने पिता से उच्च हूँ।'' जिन परिस्थितियों में यह कथन हुआ है, उनके विश्लेषण से प्रतीत होता है कि यद्यपि इस प्रकार के विवाह उस युग में प्रचलित थे किन्तु उनका समादर न था। अल्बरुनी भी अनुलोम विवाह को घृणा की दृष्टि से देखता था। कल्हण ने भी अपनी राजतरंगिणी में इसकी बड़ी आलोचना की है।

अन्तार्जातीय भोज–

अन्तर्जातीय विवाह के निषेध के साथ ही अन्तर्जातीय भोज के भी नियम कठोर हो गये थे। अंगिरस[30] में शूद्र के साथ सहभोज का निषेध है। किन्तु चन्देल युग में ये नियम इतने कठोर हो गये थे कि ब्राह्मण भी बिना पाद प्राच्छालन वटु के निवास में प्रवेश न कर सकता था। इन कठोर नियमों मे होते हुए अन्तर्जातीय सहभोज संभव न था। अल्बरुनी का कथन है कि यदि कोई ब्राह्मण कुछ निश्चित दिनों तक शूद्र के घर का भोजन करता था। वह जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के भोजन में अन्तर आ जाने से उनका परस्पर सहभोज असंभव हो गया था। ब्राह्मण पूर्व शाकाहारी बन गये थे जबकि क्षत्रिय माँसाहारी हो रहे थे। इन परिस्थितयों में ब्राह्मण तथा वैश्यों का सहभोज भी असंभव हो गया था। इस प्रकार सवर्ण विवाह की भाँति, उस युग में सजातीय सहभोज की ही प्रतिष्ठा थी।

खान–पान–

ब्राह्मणों ने सभी प्रकार के मादक पेयों का परित्याग कर दिया था। अधिकांशतः क्षत्रिय और विशेषतः राजवंश के लोग मदिरापान न करते थे। अलमसूदी का कथन है कि– ''हिन्दू मदिरा न करते थे और मद्यपों का सम्मान न होता था। यदि ये सिद्ध हो जाता था कि उनके किसी राजा ने मदिरापान किया है, तो उसे राज्य त्याग करना पड़ता था, क्योंकि यह साधारण विश्वास था कि मद्य से मस्तिष्क विकृत हो जाता है, जिससे वह शासन के योग्य न रहता था।'' ब्राह्मणों की भाँति उच्च वंशीय क्षत्रिय सुरापान न करते थे। सुलेमान का कथन है कि ''क्षत्रियों को तीन चषक सुरापान का निर्देश था।'' संभवतः बौद्ध

तथा जैन सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण वैश्य भी अधिक मद्यपान न करते थे।[31] किन्तु शूद्रो के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध न था।

साधारणतः ब्राह्मण किसी भी पशु का माँस न खाते थे, यद्यपि ऐसा कोई प्रतिबन्ध न था। व्यास स्मृति में तो यह उल्लेख है कि श्राद्ध में आमंत्रित ब्राह्मण को अवश्य ही माँस का सेवन करना चाहिए, अन्यथा उसे पतित होना पड़ता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सभी के लिए श्राद्ध तथा यज्ञों के अतिरिक्त, पशुवध तथा माँस सेवन का निषेध था। वैष्णव धर्म के प्रचार से लोगों ने माँस का सेवन बन्द कर दिया था, जैसा कि भागवत पुराण में निर्देश है। साधारणतः ब्राह्मण माँस से परहेज करते थे। अधिकांश वैष्णव वैश्य भी माँस न खाते थे। शूद्रों में भी कुछ लोग थे जो माँस का स्पर्श तक न करते थे और माँस त्याग को धार्मिक विशेषता समझते थे।[32]

इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों के लिए गाय और भैंस के दूध के अतिरिक्त अन्य पशुओं के दूध का भी निषेध था। प्याज, लहसुन तथा इसी प्रकार के अन्य शाकों का भी उन्हें निषेथ था। गौमाँस तथा चीता आदि बड़े पशुओं के माँस का पूर्ण निषेध था। जो व्यक्ति इन प्रतिबन्धों का पालन न करते थे वे जाति से बहिष्कृत कर दिये जाते थे।

संदर्भ–

1 इपीग्राफिया इण्डिका, भाग एक पृ. 154, श्लोक 40
2 इपीग्राफिया इण्डिका, भाग एक पृ. 151, श्लोक 71
3 आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ मैसूर भाग 21 पृ. 50
4 इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग 16, पृ. 201
5 इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग 16, पृ. 109, इपीग्रफिया इण्डिका भाग 4, पृ. 154
6 इण्डियन इण्डिका भाग 4 , पृ. 154
7 इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग 16, पृ. 209
8 इण्डियन इण्डिका भाग 16, पृ. 1–15
9 इण्डियन एण्टीक्वेरी भाग 16, पृ. 209
10 इपीग्राफिया इण्डिका भाग 4 , पृ. 154
11 इलियट, भाग 1, पृ. 16–17
12 इलियट, भाग 1, पृ. 67
13 सचान, भाग 1, अध्याय 9, पृ. 101
14 राजतरंगिणी 8, श्लोक 2407
15 इलियट, भाग 1, पृ. 16–17
16 इलियट, भाग 1, पृ. 76
17 आल्टेकर–राष्ट्रकूट्स एण्ड देयर टाइम्स, पृ. 319, फुटनोट 4
18 इलियट, भाग 1, पृ. 16–76
19 इलियट, भाग 2, पृ. 16 तथा 76
20 इपीग्राफिया इण्डिका, भाग 1, पृ. 146, श्लोक 53–54, पक्ति 19–21
21 प्रबोध चन्द्रोदय, अंक 2, पृ. 5
22 इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग 12, पृ. 13
23 इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग 16, पृ. 202
24 जनरल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी 1904, पृ. 642
25 विद्वान ब्राह्मण के नाम के प्रयुक्त होने वाली उपाधि–द प्रैक्टिकल डिक्सनरी बाई आप्टे, पृ. 610
26 इपीग्राफिया इण्डिका, भाग 12, पृ. 62
27 इण्डियन एण्टीक्वेटी, भाग 7, पृ. 73
28 सचान, भाग 1, पृ. 136
29 भवति च वेदोच्चारणे जिहवाच्छेदो धारणे भेद इति वेदान्त के प्रथम अध्याय के तीसरे पद के 38वें सूत्र पर शंकराचार्य की टीका
30 आंगिरस–श्लोक 55–57
31 मेडिवल हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग 2, पृ. 184–185
32 काणे–हिस्ट्री आफ धर्म शास्त्र, भाग 3, अध्याय 22, पृ. 780

❐❐❐